हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांह

डॉ. मुकेश नायक

'हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांह. ऐसा कोई नां मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांह॥'

संत कबीर का यह दोहा केवल शब्दों का संयोजन नहीं, बल्कि मानव जीवन का सबसे बड़ा सत्य है. यह दोहा हमें उस वास्तविकता से परिचित कराता है जिसे हम जानते हुए भी स्वीकार नहीं करना चाहते. हम अपने चारों ओर संसार को बदलते हुए देखते हैं. लोग आते हैं, लोग जाते हैं. रिश्ते बनते हैं, रिश्ते टूटते हैं. साम्राज्य खड़े होते हैं और समय की धूल में विलीन हो जाते हैं. जो आज शक्तिशाली है वह कल इतिहास बन जाता है. जो आज युवा है वह कल वृद्ध हो जाता है. जो आज हमारा है वह कल किसी और का हो जाता है. कबीर इस पूरे दृश्य को देखकर कहते हैं कि मैं संसार को जाते हुए देख रहा हूँ और संसार मुझे जाते हुए देख रहा है. इस कालचक्र में कोई भी स्थायी नहीं है.

मनुष्य का सबसे बड़ा भ्रम यह है कि वह स्वयं को स्थायी मान बैठता है. वह घर बनाता है मानो सदियों तक यहीं रहने वाला हो. वह धन इकट्ठा करता है मानो मृत्यु कभी उसके द्वार पर नहीं आएगी. वह पद और प्रतिष्ठा के पीछे भागता है मानो यही उसके जीवन का अंतिम लक्ष्य हो. लेकिन समय हर दिन उसे एक मौन संदेश देता रहता है कि जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह परिवर्तनशील है. संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक परिस्थिति परिवर्तन के नियम के अधीन है. यही वह सत्य है जिसे उपनिषदों ने समझाया, गीता ने उद्घाटित किया, बुद्ध ने अनुभव किया और कबीर ने जन-जन की भाषा में व्यक्त किया.

कठोपनिषद में नचिकेता ने यमराज से मृत्यु का रहस्य पूछा था. यमराज ने उसे बताया कि अधिकांश लोग संसार के आकर्षणों में उलझे रहते हैं और वास्तविक ज्ञान से दूर रहते हैं. वे स्वयं को बुद्धिमान समझते हैं, जबकि वास्तव में अज्ञान के अंधकार में भटक रहे होते हैं. आज का मनुष्य भी उसी स्थिति में खड़ा दिखाई देता है. उसके पास तकनीक है, संसाधन हैं, सूचना है, लेकिन आत्मज्ञान नहीं है. वह दुनिया को जीतने निकला है, पर स्वयं से हार चुका है. उसे यह पता है कि दुनिया में क्या चल रहा है, लेकिन यह नहीं पता कि उसके भीतर क्या चल रहा है.

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को विराट रूप दिखाते हुए कहा था कि मैं काल हूँ, लोकों का नाश करने वाला. यह वाक्य केवल युद्धभूमि के लिए नहीं था, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए था. काल वह शक्ति है जिसके सामने राजा और रंक, ज्ञानी और अज्ञानी, शक्तिशाली और निर्बल सभी समान हो जाते हैं. कोई भी व्यक्ति समय को रोक नहीं सकता. हर जन्म मृत्यु की ओर बढ़ रहा है और हर क्षण हमें उस अंतिम सत्य के निकट ले जा रहा है. लेकिन इसका अर्थ निराशा नहीं है. इसका अर्थ जागृति है. जब मनुष्य समझ लेता है कि समय सीमित है, तब वह जीवन को अधिक सार्थक ढंग से जीना प्रारंभ करता है.

बुद्ध ने कहा था कि संसार की प्रत्येक वस्तु अनित्य है. दुख का कारण संसार नहीं, बल्कि हमारी आसक्ति है. हम नश्वर वस्तुओं में स्थायित्व खोजते हैं. हम चाहते हैं कि लोग हमेशा हमारे साथ रहें, परिस्थितियाँ हमेशा हमारे अनुकूल रहें, सफलता हमेशा हमारे पास बनी रहे और जीवन हमारी इच्छाओं के अनुसार चलता रहे. लेकिन जब ऐसा नहीं होता तो हम दुखी हो जाते हैं. वास्तव में दुख परिवर्तन से नहीं, परिवर्तन का विरोध करने से उत्पन्न होता है. जो व्यक्ति जीवन की अनित्यता को स्वीकार कर लेता है, उसके भीतर एक अद्भुत शांति जन्म लेने लगती है.

कबीर जब कहते हैं कि ऐसा कोई नहीं मिला जो मेरी बाँह पकड़कर मुझे छुड़ा सके, तो वे केवल किसी व्यक्ति की बात नहीं कर रहे हैं. यहाँ बाँह का अर्थ उन बंधनों से है जिनमें मनुष्य स्वयं को जकड़े हुए है. यह बाँह मोह की है, अहंकार की है, भय की है, लालच की है, तुलना की है और अज्ञान की है. मनुष्य सोचता है कि संसार ने उसे बाँध रखा है, जबकि वास्तव में वह स्वयं अपनी इच्छाओं और आसक्तियों की जंजीरों को पकड़े बैठा है. जब तक यह पकड़ बनी रहती है, तब तक मुक्ति संभव नहीं है.

आज का युग भौतिक रूप से सबसे अधिक विकसित युग माना जाता है, लेकिन मानसिक और आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य पहले से अधिक बेचैन दिखाई देता है. सोशल मीडिया ने हमें दुनिया से जोड़ दिया है, लेकिन स्वयं से दूर कर दिया है. हम दूसरों की उपलब्धियाँ देखकर स्वयं को कमतर मानने लगे हैं. हम लाइक्स और फॉलोअर्स में अपनी पहचान खोजने लगे हैं. हमारी खुशी बाहरी स्वीकृति पर निर्भर हो गई है. हम लगातार तुलना कर रहे हैं और इसी तुलना में अपनी शांति खो रहे हैं. कबीर का दोहा आज पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक है क्योंकि आज मनुष्य की सबसे बड़ी कैद उसके अपने मन के भीतर है.

सफलता की आधुनिक परिभाषा धन, पद और प्रसिद्धि पर आधारित है, लेकिन वास्तविक सफलता इससे कहीं अधिक गहरी है. वास्तविक सफलता वह है जब व्यक्ति परिस्थितियों के बीच शांत रह सके. जब वह विपरीत परिस्थितियों में भी आशा बनाए रख सके. जब वह सफलता मिलने पर अहंकार से बच सके और असफलता मिलने पर टूटे नहीं. जब उसका आत्मविश्वास बाहरी उपलब्धियों पर नहीं, बल्कि आंतरिक स्थिरता पर आधारित हो. ऐसा व्यक्ति संसार में रहते हुए भी संसार से ऊपर उठ जाता है.

सद्गुरु की आवश्यकता भी इसी कारण बताई गई है. गुरु केवल कोई व्यक्ति नहीं होता. गुरु वह चेतना है जो अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाए. कभी वह एक संत के रूप में मिलता है, कभी किसी पुस्तक के रूप में, कभी किसी अनुभव के रूप में और कभी जीवन के किसी कठिन संघर्ष के रूप में. गुरु हमें नया ज्ञान नहीं देता, बल्कि हमारे भीतर पहले से मौजूद सत्य को प्रकट करता है. वह हमें यह याद दिलाता है कि हम केवल शरीर नहीं हैं, केवल नाम नहीं हैं, केवल सामाजिक पहचान नहीं हैं. हमारे भीतर एक ऐसी चेतना है जो समय और परिस्थितियों से परे है.

जीवन का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि मुक्ति संसार छोड़ने में नहीं, बल्कि संसार के बीच रहते हुए स्वयं को पहचानने में है. गीता का संदेश भी यही है कि संसार में रहो, अपने कर्तव्यों का पालन करो, लेकिन आसक्ति मत पालो. प्रेम करो, लेकिन स्वामित्व मत रखो. कर्म करो, लेकिन फल के अहंकार में मत डूबो. जब मनुष्य इस संतुलन को सीख लेता है, तब जीवन संघर्ष नहीं रहता, साधना बन जाता है.

कबीर का यह दोहा हमें मृत्यु का भय नहीं सिखाता, बल्कि जीवन का महत्व सिखाता है. यह हमें याद दिलाता है कि समय सीमित है, इसलिए प्रत्येक दिन को सार्थक बनाना चाहिए. हमें अपने भीतर ज्ञान का दीपक जलाना चाहिए. हमें अपने चरित्र को ऊँचा उठाना चाहिए. हमें प्रेम, करुणा, सेवा और सत्य को अपने जीवन का आधार बनाना चाहिए. क्योंकि अंततः धन, पद, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि यहीं रह जाएगी. साथ जाएगा तो केवल हमारा कर्म, हमारा चरित्र और हमारी चेतना का विकास. जब मनुष्य इस सत्य को समझ लेता है कि संसार बदलता रहेगा, लोग आते-जाते रहेंगे, परिस्थितियाँ बनती-बिगड़ती रहेंगी और समय कभी नहीं रुकेगा, तब उसके भीतर एक नई शक्ति जन्म लेती है. वह वर्तमान में जीना सीखता है. वह छोटी-छोटी बातों में उलझना छोड़ देता है. वह स्वयं को दूसरों से तुलना करना बंद कर देता है. वह जीवन को एक अवसर की तरह देखता है, बोझ की तरह नहीं. तब उसके लिए प्रत्येक दिन एक नई साधना बन जाता है और प्रत्येक अनुभव एक नया शिक्षक. कबीर की वाणी आज भी हमें पुकार रही है कि जागो, स्वयं को पहचानो, समय के मूल्य को समझो और उस सत्य की खोज करो जो कभी नष्ट नहीं होता. संसार की भीड़ में खो जाने के बजाय अपने भीतर उतरने का साहस करो. क्योंकि जिस दिन मनुष्य स्वयं को जान लेता है, उसी दिन उसकी बाँह काल के भय से मुक्त हो जाती है. वही जीवन की वास्तविक विजय है.

क्लास by बड़े भाई

आपके शब्दों का प्रभाव पड़ता है

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

मेरे दादाजी अक्सर बोलते थे, अरे चिंता क्यों कर रहे हो 'सुबह तो होगी ही'. पहले तो यह मेरे लिए यह शब्द दादाजी का तकिया कलाम लगता था.. लेकिन समय के साथ जब मैं बड़ा हुआ तो यह शब्द मेरे लिए उम्मीद का स्थायी स्त्रोत बनता गया, अँधेरे में उजाले का एक दृढ विश्वास मेरे लिए इस शब्द में समाता गया.एक बार मैंने इस शब्द का मतलब उनसे पूछ लिया था तो उन्होंने इसकी बड़ी सुन्दर कहानी सुनाई.. उन्होंने बताया कि किसी समय एक आदमी अपने घर से परदेश जाने के लिए निकला लेकिन ठण्ड का मौसम था दिन जल्दी डूबा और वह लगातार चलकर थक भी गया..उसने खूब प्रयास किया जब तक उसकी आखिरी हिम्मत ने जवाब न दे दिया..फिर वह एक सपाट पत्थर पर बेदम लेट गया..उसे अँधेरे में ही साथ में लाया बिछौना बिछाया और एक शाल ओढ़कर लेट गया..पहले तो सब ठीक था लेकिन जैसे जैसे रात गहराने लगी, उस आदमी के मन में तरह तरह के डरावने विचारों का बादल छाने और फूटने लगा..जंगल के सूनेपन की अपनी एक अलग सी आवाज़ होती है..जंगल की वह आवाज़ अब उस आदमी को डराने लगी..उसने सिर से शाल ओढ़ ली..जब डर पर नियंत्रण न हुआ तब उसे न जाने क्या सूझा..वो एक शब्द बुदबुदाने लगा.. सुबह तो होगी ही.. सुबह तो होगी ही.. वह इस शब्द को बुदबुदाते कब उसकी नींद लग गयी उसको पता ही नही चला.. और सच में सुअभ हो गयी.. लेकिन अब जब वह जागा तो वह चौंक गया..उसने देखा कि उसके सामने एक आदमी हाथ जोड़े उसके जागने की प्रतीक्षा कर रहा है..उसने कहा क्या हुआ भाई? वो आदमी पैरों को पकड़कर बोला कल मैं यहीं डरा सहमा लेटा हुआ था..फिर मुझे अचानक आपकी आवाज़ आई आप बोल रहे थे सुबह तो होगी ही..और मुझे नींद आ गयी और रात बीत गयी.. बहुत धन्यवाद आपका गुरुदेव..

उस आदमी को कुछ समझ नही आया, वह तो बस अपने भीतर हिम्मत बंधाने के लिए जो आया वो कह रहा था..इस तरह दादाजी ने कहानी पूरी की और आगे कहा कि देखो एक शब्द ने न केवल कहने वाले को हिम्मत दी बल्कि सुनने वाले के भीतर भी वही प्रभाव छोड़ा.

इसलिए हमेशा अच्छे सकारात्मक बाते करिए..क्योंकि जैसी बात होगी वैसा ही मनोभाव पैदा करेगी.. कितना भी दु:ख हो.. मुश्किल हो.. शब्दों से इन्हें कभी मत पोषित करना, हर हाल में अपने शब्दों में बातों में उम्मीदें रखना..तुम देखोगे तुम्हारे शब्द हर चुनौती को परास्त करने के लिए तुमको तैयार कर देंगे..यह कहानी कितनी सच थी भगवान् जाने लेकिन मेरे लिए उस दिन से यह जादुई शब्द बन गया.. 'सुबह तो होगी ही' दादाजी का यह शब्द हर मुश्किल में मुझे बहुत हिम्मत देता है..आप भी ऐसे शब्द अपने पास रखिये..अच्छा लगेगा..धन्यवाद

जीवन सरिता की अंतर्लय के हाइकु

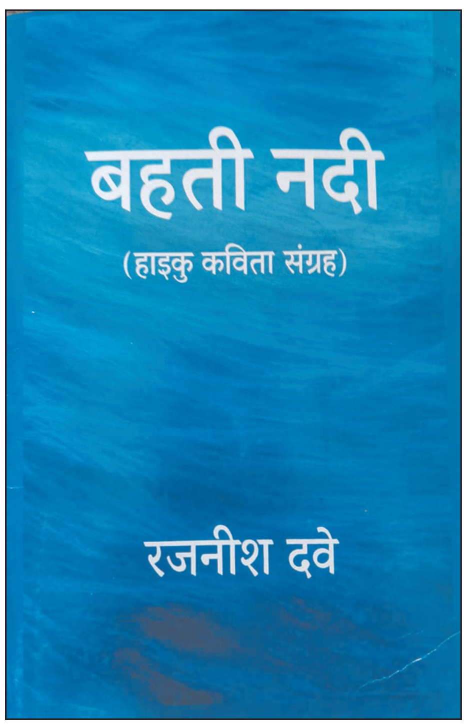

मनीष वैद्य

'सुन ज़िंदगी / खड़ा हूँ मैदान में / कर जो चाहे.' इस हाइकु में यह जो इंसान की जिजीविषा और उसके संघर्ष की अदम्य इच्छा है, यही एक कवि का स्वप्न है. एक और हाइकु है- 'पता लिख लो / कम होते जा रहे/ भले आदमी.' इसमें भले आदमी बने रहने से आशय है धरती पर इंसानियत क़ाबिज रहे, ज़िंदा रहे, यह दुनिया अपनी आदमियत के साथ ही खूबसूरत हो सकती है. इंसान और इंसान के बीच स्नेह का नाता दुनिया का सबसे सुंदर और ज़रूरी रिश्ता है. जिस दिन यह रिश्ता नहीं बचेगा, दुनिया उजाड़ और नीरस हो जाएगी.

वरिष्ठ लेखक, रंगकर्मी और मालवी में अनुवाद करने वाले रजनीश दवे के हाइकु संग्रह 'बहती नदी' से गुजरते हुए मैं लगातार उनकी सर्जना से प्रभावित होता रहा. एक कवि के रूप में उनके हाइकु हमें यथार्थ की खुरदुरी ज़मीन से आसमानी कल्पनाओं तक के विस्तारित दायरे में फैले हुए नज़र आते हैं. जीवन की तमाम झंझावातों के बावजूद उनके हाइकु अपनी ज़मीन पर मजबूती से पैर जमाए खड़े मिलते हैं. इसकी बानगी है- 'दु:ख. निराशा / मौसम आते-जाते/ फ़िक्र न कर.' या 'जग पिंजरा/ पंख फड़फड़ाते / इंसानी पंछी.'

यह उनका पहला हाइकु संग्रह है. इससे पहले उनके तीन दशक के लेखन खाते में आषाढ़ का एक दिन, हत्यारे, महाभोज, पगला घोड़ा आदि कालजयी नाटकों में अभिनय सहित मालवी के दो कविता संग्रह हैं. वे लघु फिल्मों, 50 से अधिक नाटकों, वीडियो एलबम और

पुस्तक चर्चा

दूरदर्शन धारावाहिकों में अभिनय करते रहे हैं. उन्हें संत पीपा स्मृति सम्मान सहित लोक साहित्य रत्न सम्मान भी मिल चुका है.

रजनीश दवे के इस संग्रह के हाइकु से गुज़रते हुए मुझे बराबर यही लगता रहा कि जैसे मैं किसी ठहरी हुई नदी के किनारे पर सुबह की उजली धूप में जीवन राग के अंतर्लय को सुन पा रहा हूँ. इस संगीत का आरोह-अवरोह मंत्रमुग्ध भी करता है और एक बेहद उदासी व सन्नाटे के परिदृश्य में भी रचनात्मकता की संभावनाओं को खोलता है. इनमें हम अपने जीवन राग को सुन पाते हैं. जीवन की धड़कन इनके आसपास से होती हुई गुज़रती प्रतीत होती है. ये हाइकु दियासलाई की उन तीलियों की तरह है जो अपनी बनक में छोटी होने के बाद भी चिंगारी पैदा करने और उसके दावानल बना देने की सामर्थ्य रखती है.

हाइकु जापान की एक अति संक्षिप्तता में अपनी बात को कह पाने की लोकप्रिय विधा है, लेकिन रजनीश दवे के हाइकु में हमें क्षिप्रा नदी की धार की तरह मालवा की शस्य श्यामला धरती की गंध महसूस होती है. भाषा का जल तत्व सहज ही पाठक को खींचता है. इनमें छोटे-छोटे प्रश्न हैं, प्रश्नचिन्हों की शक्ल में जैसे लहरें उठती हैं! अंतरंग और पारिवारिक जीवन की विडम्बनाएँ और वृहत्तर सामजिक-राजनैतिक विडम्बनाएँ इस तरह छनकर हाइकु की अंतर्वस्तु पर पड़ती हैं जैसे गिरजाघर के नीले-पीले शीशों से छनकर उसके सूने फर्श पर धूप पड़ती है...किचकिचाती धूल का मौन रेला उजागर करती हुई! '

इनमें कवि का अंर्तमन है, अपने समय और समाज को पकड़ने की जद्दोजहद है तो प्रकृति को भी अलग-अलग कोणों से देखा गया है. इनमें जीवन की धड़कन साफ़ सुनाई देती है. इनका विषय विस्तार दूर तक जाता है और इनमें एक कवि के रूप में उनकी गहन-गंभीर दृष्टि और अनुभवजन्य समझ की झलक मिलती है. वे वर्तमान जीवन की अंधी चूहादौड़ करती पीढ़ी को भी देखते है कि वह कितनी आत्म केन्द्रित हो चुकी है. हाइकु सहज-सरल और सम्प्रेषणीय होने के साथ सटीक हैं. बिम्बों का ताज़ापन इनमें सौंधी गंध जगाता है. प्रवाहपूर्ण भाषा में होने से पाठक इन्हें अपनी लय में पढ़ लेता है. कवि की दृष्टि कुछ अलग तरीके से, नए रूपकों, नए बिम्बों और नए शिल्प का सहारा लेकर अपनी समझ को हमारे बीच रखने की कोशिश करता है. कवि स्वभावत: सहज और सरल होता है. यही बात यहाँ भी महसूस होती रही. इसमें आगे के लिए बेहतर संभावनाएँ और अपने पिछले जीवन संघर्षों के खट्टे-मीठे अनुभवों की बेशकीमती सीख भी होती है.

बहती नदी (हाइकु संग्रह)
रजनीश दवे
कीमत -100 रुपए
मालवी मिठास प्रकाशन, देवास (मप्र)

कविता

हम जीवित हैं इनके बल से

डॉ. प्रज्ञा मिश्रा

हम सब दमक रहे हैं इनसे।
हम जीवित हैं इनके बल से ।।
तुलसी, बरगद, पीपल नीम।
कॉंचनार से हैं रंगीन ।।
अशोक वृक्ष अर्जुन की छाल।
कत्था, पलाश, चुकन्दर लाल ।।
हम सब दमक रहे हैं इनसे ।
हम जीवित हैं इनके बल से ।।

चंपा, चमेली, जूही, मालती।
बेला बगिया को महकाए ।।
पान का पत्ता शीतल है।
पिपरमेंट की ठंडी बयार है।।
हम सब दमक रहे हैं इनसे।
हम जीवित हैं इनके बल से ।।

गुल चाँदनी, मेंहदी, चंपा।
कमल, गुलाब, चंदन, केला ।।
बेलपत्र भी बड़ा कमाल।
अब तो कर लें आम की बात ।।
हम सब दमक रहे हैं इनसे।
हम जीवित हैं इनके बल से ।।

यहां हर कोई सबको जानता है... बस खुद को छोड़कर

विनोदानन्द झा

हमारी आदत है — दूसरों में कमियाँ ढूँढना. इस दुनिया में हर आदमी दूसरे को पहचानता है. उसे पता है कि कौन स्वार्थी है, कौन चालाक है, कौन घमंडी है, और कौन भरोसे के लायक नहीं है. यहाँ हर कोई सबको जानता है... बस खुद को छोड़कर. मज़ेदार बात यह है कि वही लोग कभी अपने बारे में नहीं सोचते. अगर उसी आदमी से पूछ लिया जाए — 'क्या आप खुद को जानते हैं?' तो वह थोड़ा रुक जाता है... क्योंकि सच यह है कि हमारी पूरी ज़िंदगी दूसरों को समझने में गुजर जाती है, लेकिन जिस इंसान के साथ हम सबसे ज़्यादा समय बिताते हैं... उसे ही हम ठीक से नहीं जानते. और वह इंसान है — हम खुद.

आज सोशल मीडिया ने इस बीमारी को और बढ़ा दिया है. हर कोई यहाँ विशेषज्ञ (श्व×श्चद्गह्ल) बन चुका है. लोग पोस्ट लिखते हैं — 'आजकल के लोग बहुत स्वार्थी हो गए हैं.' 'आज की पीढ़ी में संस्कार नहीं हैं.' 'दुनिया में ईमानदारी खत्म हो गई है.' लेकिन वही लोग अगर अपने जीवन पर नजर डालें तो पता चलेगा कि — वही स्वार्थ, वही झूठ, वही दिखावा उनके अंदर कूट कूट कर भरा है. यानी सोशल मीडिया पर हम दूसरों को आईना दिखाते हैं, लेकिन कभी खुद आईने के सामने खड़े नहीं होते.

एक और मज़ेदार बात है. हम अक्सर कहते हैं — 'मैं उस आदमी को अच्छी तरह जानता हूँ.' लेकिन सच यह है कि — हम किसी को भी पूरी तरह नहीं जान सकते. क्योंकि हर इंसान के अंदर एक अदृश्य दुनिया होती है. उसके डर, उसकी उम्मीदें, उसकी परेशानियाँ - यह सब हमें दिखाई नहीं देता. लेकिन फिर भी हम दूसरों के बारे में फैसला सुनाने में सबसे आगे रहते हैं.

इसलिए आज से एक छोटा सा प्रयास करें. दुनिया को समझने से पहले, लोगों को जज करने से पहले, दूसरों की कमियाँ गिनाने से पहले एक बार खुद के अंदर झाँककर देखिए. शायद आपको पता चले कि — जिस इंसान को हम सबसे कम जानते थे... वह हम खुद ही थे. किसी शायर ने बहुत खूब कहा है :

'हर शख्स को दुनिया की खबर रखते देखा,
पर खुद से ही उसे बेखबर रहते देखा.
दूसरों की कमियाँ गिनते रहे उम्र भर,
आईना सामने था... मगर नज़रें फेरते देखा.

भगवतगीता में श्रीकृष्ण कहते हैं :

'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः'

अर्थात जो खुद को जान लेता है, वो संसार कीहर गुत्थी सुलझा सकता है क्योंकि आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है. बाहर की दुनिया भ्रमित कर सकती है, लेकिन अंदर की दुनिया सच्चाई दिखाती है.

लेखक पूर्व महाप्रबंधक (जनसम्पर्क), बीएचईएल हैं

व्यंग्य

टैरो कार्ड

सुरेश सौरभ

एक अधेड़ संभ्रांत घर की महिला थाने में सुबकते हुए कह रही थी, ''सर जी उसने मुझे होटल में से बुलाया, फिर धोखे से उसने मेरी इज्जत तार-तार कर दी.'

दरोगा- 'यह तो बहुत ही गलत हुआ आप के साथ मैडम जी!..फिर मैडम की ओर गौर से देखते हुए, अरे! मेम लग रहा मैंने आप को कहीं देखा है.

उस महिला के साथ आए कुछ परिचितों में से एक बोला- 'कमाल करते हैं साहब जी आप को पता नहीं?अरे! यह मैडम टैरो कार्ड से लोगों का भविष्य बताती हैं. अखबारों-पत्रिकाओं में इनके रेगुलर कालम छपते हैं. कई चैनलों से इनके प्रोग्राम आते हैं.'

दरोगा मैडम जी की ओर हिकारत से देखते हुए- 'अरे! वाह ये तो बड़ी अच्छी बात है. फिर आप मैडम जी उस होटल में करने क्या गईं थीं.'

मैडम बोले उस पहले मैडम का चमचा ही बोल पड़ा- 'दरअसल उस आदमी ने मैडम से अपने करोबार के, भविष्य के बारे में जानने के लिए बुलाया था....' ''उस नामुराद निगोड़े ने होटल के कमरे में मुझे अकेले बुलाया ...मैडम फिर से सिसकने लगीं..फिर उसने जबरदस्ती मेरे साथ..अब मैडम का रूदन उनकी व्यथा-कथा बयां कर रहा था...मुझे उस कमीने ने कहीं का न छोड़ा. उँ उँ उँ..ऽऽऽ..

दरोगा मैडम की शिकायत दर्ज करने लगा. तब तक वहाँ मीडिया कर्मी भी सूँघते-सूँघते आ गये. ..क्या हुआ? क्या हुआ? सवाल दर सवाल दरोगा पर दागने लगे? तब दरोगा झल्लाकर मैडम की ओर उँगली उठाकर बोला- 'मेरे से क्या पूछते हो ? इन मैडम जी से पूछो-जो सब का भविष्य टैरो कार्ड से बताती हैं. पर एक धोखेबाज ने धोखे से इनके चरित्र का, भविष्य खराब कर दिया.' अब वहाँ चख-चख थी. सवाल दर सवाल मैडम और उनके समर्थकों के कलेजे सुलगा रहे थे. मैडम की बैग में पड़े टैरो कार्ड अट्ठहास करते हुए कह रहे थे- 'दूसरो का भविष्य टैरो कार्ड से बताने वालों के भविष्य खबर की आज खबरनवीस ले रहे हैं.'

कविता

शंकरानंद

बनाने का हुनर

मैंने उन हाथों को अक्सर देखा है
जो परवाह नहीं करते धूल की
कुछ भी रचना इतना आसान नहीं
जितना खिलखिलाना एक तस्वीर के लिए

वे नींद का पहाड़ पलकों पर लिए
न जाने कितनी शताब्दियों से
भटक रहे हैं चेहरा बदल कर
लिबास बदल कर
भाषा के नए नए रूप के साथ
वही पुरानी थकान लिए
कहीं भी दिख जाते हैं
कुछ भी मरम्मत करते हुए

टूटी और खंडहर हुई इच्छाएं एक तरफ
दूसरी तरफ बनाने का बेमिशाल हुनर
जो पलक झपकते
तैयार कर दे सब कुछ

बस अपनी भूख का कोई इलाज नहीं
वे रोटी के लिए
अपना घर छोड़ देते हैं
छोड़ देते हैं अपनी जमीन
उस बच्चे की मुस्कान
जिसे देखना ईश्वर को देखना है

इसी पृथ्वी पर
एक दिन गुम हो जाते हैं वे
किसी पतंग की तरह कट कर
उनके धागे
इतने टुकड़ों में बिखर जाते हैं कि
चेहरा पहचानना भी मुमकिन नहीं होता!

संपादकीय बोर्ड | प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी, समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी